ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-7* October-2020
Anthology : The Research

'जुलूस' की प्रासंगिकता और लोक–संस्कृति मूलक समाज
Relevance of 'Julus' and folk

Paper Submission: 12/10/2020, Date ofAcceptance: 25/10/2020, Date of Publication: 26/10/2020

मंजुला
असिस्टेंट प्रोफेसर
शिक्षा शास्त्र विभाग,
इस्लामिया टी0 टी0 कॉलेज,
फुलवारीशरीफ, पटना, बिहार
भारत

सारांश

साहित्य को जब समाज का दर्पण कहा गया, तो बुद्दिजीवियों ने नयापन के नाम पर यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि दर्पण मे चेहरा दिखता है,चरित्र नहीं। 'चरित्र' और 'चाल' को देखने– दिखाने के लिए फ्रायड के अनुनायियों ने मनोविश्लेषणवादी परंपरा का लेखन प्रारम्भ किया किन्तु इस परंपरा मे परिवेश और प्रतिमानकहीं धुंधले पड़ने लगे। इसी बीच प्रेमचंदोत्तर साहित्य मे फणीश्वर नाथ रेणु जी ने'जुलूस' जैसी यथार्थवादी लघु उपन्यास की रचना की। यह उपन्यास सामाजिक चेतना का मनोवैज्ञानिक प्रतिमान माना जा सकता है। इसमें वर्णित बेघर आबादी का दर्द, जातीय उन्माद, प्रेम का पाखंड, स्त्री अस्मिता संबंधी समस्याओं का चित्रण हिन्दी साहित्य के उपन्यास लेखन को वर्तमान संदर्भ मे प्रासंगिक बनाता है।

When literature was called "mirror" of the society, the intellectuals in the name of newness, started saying that only face appears in the mirror and not the character. In an attempt to showcase "character" & "gait", the followers of Freud began the psychoanalytic tradition of writing. However, in this psychoanalytic tradition of writing, the paradigm and societal surroundings began to blur. Meanwhile, in post-Premchand era of Hindi literature, Mr. Phanishwarnath Renu wrote a realistic short novel like 'Zulus'. This novel can be considered as an epitome of psychological analysis of social consciousness. The depiction of pain & suffering of homeless population, ethnic hysteria, hypocrisy of love, problems related to women dignity and identity crisis in it, makes the novel writing of Hindi literature relevant in contemporary context.

If the slogan of "ek Bharat shreshthta Bharat" is to be implemented in reality then Indian society should be based on indigenous & folk culture.

मुख्य शब्द : साहित्य, वर्तमान संदर्भ , प्रासंगिकता, जुलूस।
Literature, Current References, Relevance, Procession.

प्रस्तावना

आजादी को 72 साल बीत चुके। किन्तु आज भी हिन्दी साहित्य में किसी ऐसी पृष्ठभूमि एवं विषयवस्तु की बात की जायेय जो आधुनिक भारत के इतिहास के प्रारंभ 1857 से आज और अबतक अपनी हस्तक्षेप बनाये रखा है, तो हम भारत के विभाजन की चर्चा करते हैं। कितनी विडम्बना की बात है कि 1857 के गदर में जो हिंदू और मुसलमान अपनी साझा संस्कृति की ताकत से अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ रहे थे, वही 1947 ई० तक आते–आते अपने–अपने देश और दहलीज की गाथा लिखने लगे।वैश्विक समाज को 'वसुधैव– कुटुंबकम' का संदेश देने वाले राष्ट्र के बांटने और बिखरने का तमाशा देखता रहा। हिंदी साहित्य के विभिन्न कथाकारों और उपन्यासकारों ने इस दुर्भाग्य को अपनी लेखकीय चेतना का आधार बनाया। यद्यपि कवियों ने इस विषय पर कुछ अधिक नहीं लिखा, तथापि यदा कदा उनकी रचनाओं में विभाजन के पूर्व और बाद का दर्द बयां होता है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य देश विभाजन के बाद उत्पन्न शरणार्थियों की समस्याओं एवं मनोभावों को उद्‌घाटित करना है। सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन 'अज्ञेय' ने 'शरणार्थी' शीर्षक से कविताओं की एक श्रृंखला ख12 अक्टूबर 1947 से 12 नवंबर 1947 ई० तक, लिखी थी।सन 2020 के अक्टूबर में भी शरणार्थियों पर केंद्रित 'जुलूस' उपन्यास की प्रासंगिकता पर विमर्श करना उचित और अपेक्षित है। अक्टूबर 1947 में लेखकीय चेतना जगी थी,तो अक्टूबर 2020 में समीक्षित

दृष्टिकोण कासूत्रपात किया जा रहा है। संक्षेप में हिंदी साहित्य को वर्तमान संदर्भ से जोड़कर देखना शोधपत्र का केंद्रीय लक्ष्य है।

साहित्यावलोकन

हम जानते हैं कि हिन्दी के कथाकारों ने कहानी और उपन्यास के माध्यम से देश के बंटवारे के दर्द को उजगार किया।'जुलूस' एक लघु आधुनिक लघु आचलिंड उपन्यास है जो फणीश्वर नाथ रेणु के द्वारा लिखा गया था। इसके अतिरिक्त सांप्रदायिक माहौल पर अनगिनत उपन्यास प्रकाशित हुए। किन्तु 'आम आदमी' के दर्द को बयां करने में, जिन उपन्यासों का नाम विशेष उल्लेखनीय है, उनमें 'और इंसान मर गया'(रामानंद सागर), आधा गांव (राही मासूम रजा), झूठा–सच (यशपाल), काला जल (शानी), तमस (भीष्म साहनी), लौटे हुए मुसाफिर (कमलेश्वर), काले–कोश (बलवंत सिंह) और जुलूस (फणीश्वर नाथ रेणु) की चर्चा उल्लेखनीय है। कालांतर में कितने पाकिस्तान (खुसवंत सिंह) और गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान (कृष्णा सोबती), खामोशी के उस पार (अनुरू उर्वशी बुटालिया) को भी भुलाया नहीं जा सकता।

परिसीमन

प्रस्तुत शोध पत्र फणीश्वर नाथ रेणु के बिहार पर केंद्रित 'जुलूस'उपन्यास के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक पहलुओं को दर्शाता है।

शोध अध्ययन की विधि

प्रस्तुत अध्ययन अवलोकन विधि द्वारा की गयी है। आलेख लेखन वर्णात्मक शैली में होगी।

भारत मे 'जुलूस' की प्रासंगिकता और लोक–संस्कृति मूलक समाज

फणीश्वर नाथ रेणु जिन्हें 'प्रेमचंद का उत्तराधिकारी कहलाने का गौरव प्राप्त हुआ,आज हमारे बीच नहीं हैं। किन्तु अपनी रचनाओं के कारण वे भारतीय साहित्य के कालजयी रचनाकार माने जा चुके हैं। वे आंचलिक उपन्यास विधा के पथ प्रदर्शक अथवा अन्वेशक माने जाते हैं। उन्होंने अपने आंचलिक उपन्यासों में एक तरफ जहाँ स्त्री की समस्या, जाति की समस्या, शोषण की समस्या, गरीबों की समस्या,अशिक्षा की समस्या, विवाह की समस्या, संप्रदायिक समस्या आदि मुद्दों को उठाया है, तो वहीं दूसरी तरफ स्वतंत्रताकालीन समस्त समस्याओं का चित्रण उनकी उपन्यासों में देखा जा सकता है। स्वतंत्रता पूर्व, स्वतंत्रताकालीन और स्वातंत्र्योत्तर भारत का राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक चित्रण रेणू जी के उपन्यास का परिप्रेक्ष्य रहा है। मैला आंचल (1954), परती परीकथा (1957), दीर्घतया (1963), जुलूस (1965), कितने चौराहे (1966) और पल्टू बाबू रोड (1979) इनके द्वारा रचित है।

जुलूस रेणु जी प्रकाशित की चौथी औपन्यासिक कृति है। इसे लघु आंचलिक उपन्यास कहा गया। इसका प्रकाशन सन 1965 ई० में हुआ था। जुलूस की कथा स्वातंर्त्योत्तर भारत के फलक पर लिखी गयी है। आजादी के साथ मिली विभाजन के दर्द में किस प्रकार आम व्यक्ति कराह रहा है। इस स्थिति को पढ़कर उसे महसूस किया जा सकता है। उपन्यास की कथा बिहार राज्य के पूर्णिया जिले (गोड़ियर गांव) में विस्थापितों के पुनर्वास पर केंद्रित है। हिंदी जगत के साहित्यकार जब भारत–चीन युद्ध में हार के बाद 'मोहभांग' का शंखनाद कर रहे थे। तब फणीश्वर नाथ रेणु जैसे रचयिता जीवन के उजड़ने और बसने का दर्द बयां कर रहे थे। मानो जुलूस लिखकर उन्होंने साहित्यकार के विशेषण से खुद को अलंकृत करने का नहींय प्रत्युत साहित्य को नया आकार और नये संदर्भ प्रदान करने का निश्चय किया हो। इस पुस्तक को उन्होंने 'नलिन जी की याद' को समर्पित किया है। जुमापुर (वर्तमान बांग्लादेश) के गांव के विस्थापितों को पूर्णिया जिले में बसाया गया है। इस बस्ती को विस्थापित बंगाली 'नौबीन नगर' कहते हैं।चूंकि इस बस्ती का उद्घाटन राज्य के पुनर्वास मंत्री मोहम्मद इस्माइल नबी ने किया था। अतः इसे 'नबीनगर' भी कहा जाता है। वैसे पड़ोसी गांव गोड़ियर के बिहारी लोग इसे पाकिस्तानी टोला कहते हैं। बिहारी लोग इन बंगालियों को स्वीकार नहीं कर पाते। गोड़ियर गांव वाले टोले के नाम की नामतख्ती तक को उखाड़कर फेक देते हैं। गरवाल विश्वास के बेटे को गौ मांस खाने वाला कहा जाता है। पूरी कथा में पवित्रा (दीदी ठकुराइन), तालेश्वर गोढ़ी (सबसे अधिक शिक्षित, सम्पन्न, किन्तु भ्र्ष्ठ), कालाचाँद घोष, छिदामदास, गोपालपाइन, हरलाल साहा, हरिधन मोड़ल, पंडित रामचंद्र चौधरी, रामजी गोढ़ी, कृष्ण जी गोढ़ी, जयराम सिंघ, रामजय सिंघ, रब्बी पासवान, रणवीर सिंह पहलवान, पालवेत कारे, काशीनाथ चटर्जी,हरी प्रसाद यादव, शारदा बर्मन, योगेश दास, गौरांग सरकार, संध्या, गिरीवाला देवी, काला की माँ, दीपा की माँ,पारस, रबिया, सरस्वती, कासिम, विनोद और नरेश जैसे अनेक पात्र हैं। पवित्रा उपन्यास की केंद्रीय पात्रा हैं, जिसके माध्यम से कथा आगे बढ़ती है। कासिम पवित्रा के मंगेतर को मारकर उससे विवाह करना चाहता है, किंतु कालांतर में पवित्रा को नरेश के रूप में पुनः विनोद मिल जाता है। इस बीच कथा समाज के लगभग सभी जाति–वर्ग–लिंग की समस्याओं पर प्रकाश डालती है। पालन–पोषण से लेकर जीवन यापन तक की यात्रा का चित्रण उपन्यास में दिखता है। 'बसने' और 'बसे रहने की' जद्दोजहद में मानवीय मूल्य कितने संकट से गुजरते हैं, यह पवित्रा की मनोदशा बताती है। ....और अंत में पवित्रा के संघर्ष, साहस और सौहार्द से बंगाली और बिहारी के मन की दूरी पटने लगती है। पवित्रा ने, जब वह सक्षम हो जाती है, तब कहती है की "जुमापुरी शरणार्थियो को ऐसी जगह भेजो, जहाँ वे मछली भात पेट भर खा सकें, धान उपजा सकें,पाट की खेती भी कर सकें। उपन्यास में फ्लैशबैक पद्धति का मनोवैज्ञानिक चित्रण भी बीच–बीच में कई जगह होता है। सांप्रदायिक दंगे, शैतानों का जुलूस के रूप में प्रस्तुत हुआ है।

जुलूस फणीश्वर नाथ रेणु की एक ऐसी रचना है, जो 55 वर्षों के बाद भी अपनी प्रासंगिकता बनायी हुई है। कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है और मार्गदर्शक भी। साहित्य सिर्फ वही नहीं देखता जो घटित हो रहा है, बल्कि वह भी भांप जाता है जो घटित होने वाला है। प्रेमचंद की परंपरा में लिखा गया साहित्य 'क्या घटित होना चाहिए की भी बात करता दिखता है। रेणु जी

की प्रस्तुत रचना इसी परंपरा की एक छोटी, किंतु अत्यधिक प्रगतिशील मनोविश्लेषणवादी कृति है।

भारत के विभाजन से संबंधित उपन्यासों की शृंखला में उपलब्ध यह पहला उपन्यास है, जिसकी कथा पूर्व पाकिस्तान (वर्तमान बांग्लादेश) के शरणर्थियों को आधार बनाकर चलती है। उपन्यास की रचना प्रक्रिया के बारे में स्वयं रेणु जी ने लिखा है "पिछले कुछ वर्षों से मैं एक अद्‌भुत भ्रम में पड़ा हूँ। दिन–रात, खाते–पीते मुझे लगता है कि विशाल जुलूस के साथ चल रहा हूँ। अविराम। यह जुलूस कहाँ जा रहा है, लोग कौन हैं, कहाँ जा रहे हैं, क्या चाहते हैं– मैं कुछ नहीं जानता।"

रेणु जी की उपरोक्त पंक्ति वर्तमान परिपेक्ष्य में भी अपनी प्रासंगिकता दर्ज करती है। विशेष रूप से तब महामारी के दौर में विभिन्न राज्यों से दिहाड़ी मजदूरों का पलायन हो रहा था। भूखे, प्यासे झुंड में निकलते लोग। किसी को साइकिल मिली, तो किसी को ठेला।...और कोई सवारी नहीं मिली, तो पैदल गाड़ी से ही चल दिये। सच अगर रेणु जी होते, तो पुनः इकबार जुलूस का दूसरा भाग लिख रहे होते। रेणु जी के उपन्यासों में पूरे समाज, क्षेत्र, गाँव या अंचल के ऐसे लोगों की समस्याओं का चित्रण होता है, जो लोग उपेक्षित हैं, शोषित हैं, पिछड़े हैं।यही विशेषता 'जुलूस' में भी देखी जा सकती है। इस उपन्यास का नायक कोई व्यक्ति नहीं, बल्कि नवीनगर टोला है। यह गोड़ियर गांव में है। यहां बंगाली शरणार्थियों को बसाया गया है। इसलिए उपन्यास मे चित्रित समस्याओं में व्यक्तिगत दर्द का उद्‌घाटन भी सामाजिक और आंचलिक परिपेक्ष्य में हुआ है। समस्यायें चाहे राजनीतिक हो या सामाजिक, सांस्कृतिक हो या आर्थिक, मनोवैज्ञानिक हो या राष्ट्रीयता की चेतना से जुड़े 'जुलूस' में सभी पक्षों के अनकहे अनसुलझे दर्द का मार्मिक चित्रण हुआ है।

'जुलूस' में शरणार्थियों के माध्यम से व्यक्ति के जिन संघर्षों को दर्शाया गया है, वह मनोवैज्ञानिक रूप से' शीत युद्ध' के समान है। डी० एफ० फ्लेमिंग के अनुसार–" शीत युद्ध संघर्ष करने की एक नई प्रविधि है, जो द्वितीय महायुद्ध के उपरांत विकसित हुई है। द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मनी और इटली के विरुद्ध कंधे से कंधा मिलाकर लड़ने वाले राष्ट्र संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ युद्ध की समाप्ति के पश्चात आपस में एक दूसरे से दूर होते गये। इसके परिणाम स्वरूप दोनों शक्तियों में श्रेष्ठता के लिए प्रतिद्वंदिता आरंभ हुई। फलत: दोनों देश विश्व की दो महाशक्तियों के रूप में उभरे। विश्व के अधिकतर देश इन दोनों देशों के नेतृत्व में इनके खेमे में एकत्र होने लगे। अमेरिका और रूस इनके नेता के रूप में उभरे। अब इन नेताओं के बीच विचारों और वर्चस्व का संघर्ष प्रारंभ हुआ और शीत युद्ध का जन्म हुआ। ठीक इसी प्रकार आजादी के बाद हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बीच शीतयुद्ध प्रारम्भ हो गया ,जो आज भी विद्यमान है। डॉ० एम ०एस० राजन के अनुसार,"शीतयुद्ध शक्ति संघर्ष की राजनीति का मिलाजुला परिणाम है, दो विरोधी विचारधाराओं के संघर्ष का परिणाम है, दो प्रकार की परस्पर विरोधी जीवन पद्धतियों का परिणाम है, दो विरोधी चिंतन पद्धतियों और संघर्षपूर्ण राष्ट्रीय हितों की अभिव्यक्ति है – जिनका अनुपात समय और परिस्थितियों के अनुसार एक–दूसरे के पूरक के रूप में बदलता रहता है।"

विभाजन ने स्वतंत्रयोत्तर भारत में ऐसी मनःस्थिति और वाह्य स्थिति को जन्म दिया। अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध लड़ने वाली दो जातियां हिंदू और मुस्लिम हिंदुस्तान और पाकिस्तान बन गए। स्वातंत्त्योतर भारत में भारतीय कहे जाने वाले निवासी और शरणार्थी के खेमे मे बंट गये।द्वंद, भय, भूख और भ्रष्टाचार का शीतयुद्ध प्रारंभ हो गया।

'जुलूस' का प्रारंभ ही पवित्रा के चिंतन से होता है। वह 'काकस्य परिवेदना' की पुकार लगनेवाली हल्दी चीरैया को देखकर सोचने लगती है– यही एक पखेरू है, जो उसके देश में नहीं होता था होता भी हो तो मैंने कभी नहीं देखा। सचमुच इस देश में ऐसा कुछ भी नहीं जो पवित्रा के देश में नहीं था। फिर भी...अपना देश अपना ही होता है। पर–भूमि कैसी भी हो आखिर पर–भूमि ही है। इससे पता चलता है कि शरणार्थियों को नयी भूमि को अपना समझना कितना मुश्किल होता है। साथ ही यह पक्ष भी उभर कर सामने आता है कि इन शरणार्थियों को अपनाने में स्थानीय लोगों को भी परेशानी होती है। तभी तो गोडियर गांव वाले विस्थापित बस्ती के 'नवीनगर' जैसे नाम छोड़कर 'पाकिस्तानी टोला' की संज्ञा देते हैं। यह बात कालोनी वालों को बहुत बुरा लगता है। इस बात पर पोस्टमैन से झड़प होती है कि कॉलोनी की चिठ्ठियों पर कैथोलिपि में पाकिस्तानी टोला क्यूँ लिखता है? कॉलोनी के लड़के जब बिस्किट– मिठाई बेचने गांव जाते हैं, तो गांव के दुकानदार यह प्रचारित करते हैं कि यह गोमांस खाते हैं। इनके हाथ का बिस्कुट कोई ना खरीदें। इससे कालोनी के लोग काफी व्यथित होते हैं। कालोनी की मीटिंग में व्यथित हो गोपाल पाइन कहते हैं–" बंगाली–कंगाली कहें हम सह लेंगे। जब कंगाल हो गए हैं तो कंगाल ही कहेंगे। पाकिस्तानी बोलते हैं, यह भी सहा जा सकता है। लेकिन यह गोमांस खाने की बात कहना– इसे कैसे सहा जा सकता है?" इस तरह की कई अफवाहों की संस्कृति को आकार लेते उस दौर में रेणु जी ने देखा और उसे लिपिबद्ध किया। वर्तमान दौर में अफवाहों की संस्कृति की हल्की आहट महसूस की जा सकती है। कोई कहता है कि अमूक पाकिस्तानी है तो कोई कहता है कि अहिंसा का हत्यारा है। कोई अपने स्वार्थ साधने के लिए किसी पर भी कोई आरोप लगाने से नहीं मानता।

'जुलूस' की कथा नवीनगर कॉलोनी और गोड़ियर गाँव के इर्द–गिर्द घूमती है। तत्कालीन ग्रामीण समाज के निवासियों के परिचय में जो बताया गया है, मौजूदा हालत आज भी वैसे ही हैं। रेणु जी लिखते हैं–"पंद्रह घर मैथिल, चार परिवार राजपूतों का। यह है गोड़ियर गांव का बाबू टोला। बीस घर ग्वाले, आठ धानुक, तेरह घर गोढ़ी (मछली मारने वाली जाति) लोग। इस तरह स्पष्ट है कि 'जुलूस' में वर्णित गांव की जाति–व्यवस्था भी कमोवेश यथावत है।

रेणु जी ने तत्कालीन ग्रामीण समाज की आर्थिक स्थिति और आजीविका के साधनों को बताते हुए लिखा है कि ब्राह्मण परिवार, चौधरी परिवार और राजपूतों में गिन

गुथ कर एकाध घर बाबू का। बाकी लोग यजमानी, पहलवानी, गढ़ियानी, घोड़ा लदाई, दूकान, खेती–मजदूरी और चोरी करके जीवन–यापन करते हैं। ठीक वैसे ही, जैसे आज भी दो चार प्रतिशत लोग रोजगार से निश्चिंत है, नौकरी–पेशा हैं और अधिकांश वैकल्पिक व्यवस्था में लगे हुए हैं। हां यजमानी और पहलवानी का स्थान ठेकेदारों ने ले लिया है। बस यही एक परिवर्तन दिखता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि रेणु जी ने 'चोरी' को जीवन यापन के साधनों की श्रृंखला में नामित करके कटाक्ष किया है। रेणु जी ने गांव के भ्रष्ट व्यक्ति को सबसे अधिक संपन्न दिखाया है। उसका नाम तालेवर गोढ़ी है। यह तत्कालीन समाज की विकृति का घोतक है। एक कदाचारी का संपन्न होना और फिर उसके द्वारा कमजोर और अबला को सताया जाना।

'एक भारत श्रेष्ठ भारत' की बात हम करते हैं, तो हमें याद रखना होगा कि आज हमारी विरासत में गौतम और गांधी तो सुनहरे अतीत के आदर्श हैं, जो हमारे मन और मस्तिष्क में बसते हैं। वास्तव में हमारे पांव तो वहां गड़े हैं जहां हर बस्ती गोड़ियर गांव और तालेश्वर गोढ़ी से भरा पड़ा है। हमें हमारे पांव उस दलदल से निकलकर आगे बढ़ाना होगा। तभी वर्तमान भारत 'एक'और श्रेष्ठ हो जाएगा।...और यह राह इतनी आसान नहीं है।

'जुलूस' में राजनीतिक दृश्य भी प्रस्तुत किए गए हैं। इसका वर्णन आज भी समसामयिक लगता है जैसे उपन्यास में वर्णित है कि दो दो बार आम चुनाव हो चुके हैं।हर मैट्रिक फेल युवक राजनीति में आ गया है और हर मिडिल पास कांट्रेक्टरी की आस लगाए बैठा किसी कांग्रेसी नेता की खुशामदें करता है। आम चुनाव समीप आ रहा है। प्रत्येक खादीधारी उम्मीदवार है और टिकट की पैरवी के लिए देश के कोने–कोने में पैंतरे बांधे जा रहे हैं।

कौन कहेगा की यह बातें 1965 में कही गयी थी जब चीनने 'पंचशील' का शीलहरण किया था। आज भी हालात लगभग वैसे ही है देश मे। भले ही मैट्रिक और मिडिल पास के अलावे कुछ डिग्रीधारी भी इस दौड़ में शामिल हो गये हों। यानी रेस के घोड़े और भी अधिक हो गए हैं। चीन भी सरहद पर पुरानी विजय गाथा का पुर्नपाठ करने को ललायित है।

'जुलूस' में स्त्रियों से संबंधित शोषण की समस्या का भी बहुत मुखर चित्रण दिखता है। हालांकि रेणु जी 'स्त्री विमर्श' के मंचीय लेखक नहीं थे किन्तु उन्होने स्त्री की अस्मिता, अस्तित्व और अधिकार के संघर्ष को अपनी लेखनी में स्थान दिया। जुलूस की केंद्रीय पात्रा – पवित्रा के माध्यम से स्त्री विमर्श के महत्वपूर्ण प्रश्न मुखर हुए हैं। कासिम हो या तालेश्वर गोढ़ी, सभी ने पवित्रा के स्वमान की इज्जत नहीं की। कासिम पवित्रा के सौंदर्य पर मुग्ध था। वह उससे विवाह करना चाहता था। विवाह, वो भी सहमति से नहीं बलात। मानो स्त्री मनुष्य नहीं, कोई वस्तु है जो बिन मन–मरजी के भी खरीद ली जाये या झपट ली जाये। इस बीच जब हिंदू– मुसलमान का दंगा हुआ तब उसने पवित्रा के मंगेतर विनोद का सिर काट डाला। इतना ही नहीं उसने पवित्रा के पुरे परिवार के सदस्यों की हत्या कर दी। कासिम की बर्बरता तब पराकाष्ठा पर देखी जाती है, जब वह विनोद का कटा सिर भाले की नोक पर रखकर जुलूस के आगे घूमता है। आज भी स्त्री के प्रति पुरुष की बर्बरता ऐसे ही देखने को मिलती है, कभी तेजाब फेंककर, कभी छत से फेंककर और कभी उत्तर प्रदेश की घटना की तरह पिता को मार कर। कहाँ बदली है इन क्रूर पुरुषों की दरिंदगी? तालेवर गोढ़ी की नजरों से तो आज पूरा भारतीय समाज त्रस्त है। गांव–शहर हर जगह गोढ़ी की नजरें स्त्री को देखकर लोलुप हो जाती हैं। यह बात और है कि आज गोढी केवल रेहन, बंधकी, गिरवी का कारोबार नहीं करता। वह बड़े– बड़े व्यापार करता है। बड़े–बड़े दफ्तरों का अफसर या कर्मचारी है।समाज की नामजद हस्ती है। नेता है, अभिनेता है, वक्ता है, अधिवक्ता है। आज स्थिति इतनी बदतर है कि हम रावण को भी श्रेष्ठ मानने लगे हैं। कम– से– कम रावण को 'सती' के शील का एहसास तो था। मर्यादा और मूल्य बंधक भले ही सही पर जीवित तो थे। जुलूस की सरस्वती देवी का हश्र समाज में स्त्री का शोषण से किया गया समझौता है। सरस्वती देवी कन्या पाठशाला में शिक्षिका थी। अपनी नौकरी के लिए उन्होंने खुद को स्कूल इंस्पेक्टर को सौंप दिया और गर्भ ठहर गया। सरस्वती ने जीने का जो फार्मूला चुना आज ना जाने कितनी स्त्रियों का रोडमैप बन गया। एक और प्रसंग है–पवित्रा के घर से निकलकर संध्या हरि प्रसाद जादव के साथ ट्रक पर जा बैठी। जादव ने योगेश दास और उनकी स्त्री को ट्रक के पीछे बैठाया और संध्या को अगली सीट पर अपनी बगल में सटाकर। संध्या भी पुरुषों की मंशा को बिना कहे बताने का माध्यम बनती है। पवित्रा के शरीर को भी सभी अधिकारी और ग्रामवासी भोगना चाहते हैं। शायद तभी आज स्त्री–विमर्श देहदृविमर्श के प्रति अधिक सजग है।

जुलूस का एक अंश है – जिला कमिटी की बैठक में इस बार पवित्रा के विरुद्ध कई दरख्वास्त पडी गयी। और दोनों शिकायत – पत्र गुमनाम।

एक पत्र में कहा गया है, "पवित्र देवी कॉलोनी–मेम्बर के पद के योग्य नहीं हैं।... उसका दिमाग ठीक नहीं है। कॉलोनी के बाहर के लोगों से हेल मेल बढ़ाती है।... कॉलोनी के लिए मंजुर हुए स्कूल में कॉलोनी के बाहर के बच्चों को भर्ती करवाती है।..."

दूसरे पत्र में इल्जाम लगाया जाता है–"पवित्रा देवी योगेशदास की लड़की संध्या की शादी 'हिंदुस्थानी' से करवाने के लिए तुली हुई हैं।... वह कहती है, गांव वालों के साथ रोटी– बेटी होना बहुत जरूरी है।

कॉलोनी कमेटी के अधिकांश सदस्य इन पत्रों को पढ़कर हँसे। किन्तु जिले के कोने कोने से आये हुए कॉलोनी मेम्बरों के चेहरे संकुचित हो गये।"

हम आज स्त्री सशक्तिकरण की बात करते हैं। किन्तु अगर देखें तो राजनीति में महिलाओं की सहभागिता आज भी बदतर स्थिति में है। आकड़ों मे भी और अवस्था में भी। पहले तो प्रवेश में ही एक हजारदलीलें और यदि प्रवेश हो भी जाए तो सिर्फ कांधा देने के लिए। बंदूक तो पुरुष पति ही चलाएगा। रेणु जी ने शायद 1965 में ही इस स्थिति को भांप लिया था। फिर भी उन्होंने पवित्रा के

माध्यम से स्त्री का राजनीति में सशक्त हस्तक्षेप दिखाया। यह रेणु जी की उम्मीद और आकांक्षा थी, जब उन्होंने उपन्यास के अंतिम पैराग्राफ में पवित्रा को यह कहते हुए दिखाया कि, –"मैं जी गयी फिर। मैं अकेली नहीं। मैं निस्संग नहीं। मैं कहीं निर्जन मे नहीं। मैं एक विशाल परिवार की बेटी हूँ।... इन आत्मीय स्वजनों के बीच पारस्परिक सहानुभूति और सहयोग को फिर से पनपाऊँगी मैं।... अपने गांव समाज में–लोगों के वीरान हृदय में आनंद मुखर स्वर फिर से भरना होगा।...अपरिचय, अजनबीपन, उदासीनता, अकेलापन, आत्म केंद्रिकता, वीचिछ्न्ता को दूर करके, भूले भटके लोंगों को,अपने लोंगों के पास लौटाकर लाना होगा।....मैं अपनी सत्ता को इस समाज में विलीन कर रही हूँ। लोक–संस्कृति मूलक समाज के गठन के लिए...."

रेणु जी कि यह कल्पना वर्तमान दौर में स्त्री विमर्श को अपना लक्ष्य बताता हुआ प्रतीत होता है।अपनी सत्ता और समाज का एकीकृत संगठन, ना कि अपनी सत्ता और समाज का विघटन। स्त्री के अस्तित्व, अस्मिता और अधिकार के संघर्ष लोक–संस्कृति मूलक समाज का गठन करने के लिए होते हैं – यह संदेश दिया है रेणु जी ने। साथ ही यह संकेत दिया है कि स्त्रियों की दशा और दिशा सुधारनी है तो उन्हें राजनीतिक शक्ति देनी होगी।

जुलूस में राष्ट्रीय चेतना स्वदेश प्रेम से वसुधैव कुटुम्बकम की ओर उन्मुख होती हुई दिखती है।... अपना' देश फिर 'अपना' देश।... पर भूमि कैसी भी हो, आखिर पर–भूमि ही है। ऐसी विचारधारा जब 'लोक– संस्कृति' मूलक समाज के गठन पर समाप्त होता ,है तो यह 'ग्लोबल विलेज, का ही पूर्वाभास है। ग्लोबल विलेज से भारत तो 1991 ई० में जुड़ा, किन्तु रेणु जी ने 1965 ई० में ही इसका ड्राफ्ट लिख दिया था। साहित्य की लोकमंगल के मुहावरे ने लोक संस्कृति का रूप धारण कर लिया। शायद रेणु जी को एहसास हो कि संस्कृति का संरक्षण और वैश्विक सामंजस्य पर ही नये भारत कि बुनियाद बनने वाली है...। और इस बुनियाद को स्त्रियॉ को ही गढ़ना और संजोना है।

निःसंदेह आजादी के साथ मिली विभाजन की विपदा ने इंसानों को झकझोर दिया। सरहद के दोनों तरफ का इंसान अपने अस्तित्व, अपने वजूद के लिए लड़ने लगा। यह लड़ाई जमीनी स्तर पर भी दिखी और जज्बाती स्तर पर भी।

हम जानते हैं कि रामविलास शर्मा ने यह प्रश्न कभी उठाया था कि विभाजन से हमारे भीतर क्या टूट गया है ?... और स्वयं उत्तर देते हुए उन्होंने बताया भी था कि "विभाजन से साम्राज्य विरोधी मोर्चा टूट गया है, समाजवाद के लिए राष्ट्रीय पैमानों पर चलने वाला यानि वर्तमान राज्यों में चल सक्ने वाला एक संयुक्त आंदोलन टूट गया है।...सन 1857 से लेकर 1946 तक हिंदुओं, सिखों आदि ने मुसलमानों को साथ मिलाकर देश की आजादी के लिए जो त्याग किया था, उसमें बट्टा लग गया है।... कश्मीरी जनता की आंतरिक एकता को धक्का लगा, पंजाब और बंगाल का संस्कृतिक विकास कमजोर हुआ है, राजनीतिक एकता के अभाव में भी शताब्दियों के प्रयत्न से यहाँविभिन्न धर्मविंलबियों ने जो सांस्कृतिक एकता कायम कि थी, वह टूट गयी।" वास्तव में सच्चाई तो यह है कि विभाजन एक ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण घटना है जिसपर इतिहासकर या पत्रकार चर्चा करने से कतराते हैं। सिर्फ और सिर्फ साहित्यकारों ने ही आगे बढ़कर इस संवेदनशील मुद्दे को अपना विषय बनाया और आज तक लिखने का दुःसाहस करते हैं।'जुलूस' ने अपने छोटे से कलेवर में यशपाल के 'झूठा सच ' का वतन और देश की मुख्य समस्याओं को स्पर्श किया। रेणु जी ने विस्थापितों की समस्या को उठाकर 'राष्ट्र' के कमजोर होती हुई अस्मिता को दिखाने कि पुरजोर कोशिश की है।

निष्कर्ष

किसी भी राष्ट्र की पहली शर्त होती है निश्चित भू–भाग। अपनी जमीन से कट जाना और फिर पुनः नयी जमीन पर बस जाना इतना आसान नहीं होता।

...और तब प्रारम्भ होता है ऐसा ही संघर्ष , जो वर्तमान भारत में भी दिख रहा है।निःसन्देह रेणु जी की यह रचना वर्तमान भारत के जीवन और जीवित के बीच होने वाले संघर्ष को बयां करने में काफी हद तक सक्षम मानी जा सकती है। यदि भारत को "एक और श्रेष्ठ" बनाना है तो लोक संस्कृति मूलक समाज को पुर्नस्थापित करना होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *रेणु,फणीश्वरनाथ, जुलूस, 1965, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली।*
2. *शर्मा, सुषमा, उपन्यास और राजनीति, 1976, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद।*
3. *वर्मा, कांति, स्वतंर्त्योत्तर हिंदी उपन्यास, 1966, रामचंद्र एंड कंपनी, दिल्ली।*
4. *सिंह, शशि भूषण, हिंदी उपन्यासों की प्रवृतियाँ,1970, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।*
5. *वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर,हिन्दी उपन्यासरूउपलब्धियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।*
6. *मुक्ति बोध,गजानन माधव,भारत इतिहास और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।*
7. *चंद्र और मुखर्जी, आजादी के बाद का भारत, हिंदी माध्यम कार्यान्वियन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।*